I.L.R. Punjab and Haryana (1978)2

रिवीजनल सिविल

एम. आर. शर्मा से पहले, न्यायमूर्ति

दर्शन कुमार और एक अन्य-वादी/याचिकाकर्ता बनाम रघुनाथन शर्मा-प्रतिवादी/प्रतिवादी

1977 का सिविल संशोधन संख्या 522

22 मार्च, 1978

सिविल प्रक्रिया संहिता (1908 की 5)-धारा 47 (2)-सिविल प्रक्रिया संहिता संशोधन अधिनियम (1976 की 104)-धारा 97 (2) और (3)-सामान्य खंड अधिनियम (1870 का 10)-धारा 6-किसी वाद का निष्पादन कार्यवाहियों में रूपांतरण-संशोधन अधिनियम द्वारा धारा 47 (2) का विलोपन-पुरानी धारा का प्रभाव-क्या कार्यवाहियों को शासित करना जारी है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 की धारा 97 की उपधारा (2) के सरल पठन से यह पता चलता है कि विधानमंडल ने सामान्य खंड अधिनियम, 1870 की धारा 6 के प्रवर्तन को सुरक्षित रखा है, जबकि यह निर्धारित करते हुए कि पुराना अधिनियम कुछ कार्यवाहियों को शासित करता रहेगा। सामान्य कारण अधिनियम की धारा 6 के अनुप्रयोग को बचाने का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि पक्षकारों के मूल अधिकारों को उस स्थिति के संशोधन के कारण खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए जो प्रक्रियात्मक प्रकृति का था। संहिता की धारा 47 के तहत, मुकदमे का एक पक्ष या तो अपने मुकदमे को निष्पादन कार्यवाही के रूप में या इसके विपरीत चला सकता था। यह एक मूल अधिकार था और प्रक्रिया से संबंधित मात्र अधिकार नहीं था और सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के तहत स्पष्ट रूप से संरक्षित किया गया है।

(Paras 3 and 4)

श्री एन. के. जैन, एच. सी. एस. उप-न्यायाधीश प्रथम वर्ग, गुड़गांव, दिनांक 4 मार्च, 1977 के आदेश के पुनरीक्षण के लिए धारा 115 सी. पी. सी. के अधीन

याचिका, आवेदन को अस्वीकार करते हुए।

याचिकाकर्ताओं की ओर से एम. एल. सरीन अधिवक्ता के साथ वरिष्ठ अधिवक्ता एच. एल. सरीन। प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता एम. एस. रक्कर

आदेश

एम आर शर्मा, न्यायमूर्ति (मौखिक) -

(1) विवादित संपत्ति विष्णु दत्त अग्रवाल की थी। 2 सितंबर, 1964 को उन्होंने प्रतिवादी-प्रतिवादी, रघुनाथन शर्मा के खिलाफ निष्कासन का आदेश प्राप्त किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस आदेश को लागू नहीं किया गया था। 7 जुलाई, 1975 को याचिकाकर्ता ने उक्त विष्णु दत्त अग्रवाल से यह संपत्ति खरीदी। 1 सितंबर, 1976 को, उन्होंने इस संपत्ति के कब्जे के लिए इस आधार पर एक मुकदमा दायर किया कि रघुनाथन शर्मा प्रतिवादी की किरायेदारी समाप्त होने के बाद, वह एक अतिक्रमणकारी था। लिखित बयान में एक याचिका दायर की गई थी कि याचिकाकर्ता को बाहर निकालने के पहले के आदेश को निष्पादित करना चाहिए था और कब्जा के लिए मुकदमा बनाए रखने योग्य नहीं था। 30 नवंबर, 1976 को, याचिकाकर्ता ने विद्वत विचारण न्यायालय के समक्ष एक आवेदन दायर किया कि सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 47 (2) के तहत वाद को निष्पादन याचिका में परिवर्तित किया जाए। विद्वत विचारण न्यायालय द्वारा इस प्रार्थना को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया गया था कि सिविल प्रक्रिया संहिता की पुरानी धारा 47 की उपधारा (2) को तब हटा दिया गया था और वाद को निष्पादन कार्यवाहियों में परिवर्तित करना उसका दायित्व नहीं था। निम्नलिखित न्यायालय द्वारा पारित इस आदेश को इस याचिका में चुनौती दी जा रही है।

(2) पक्षकारों के विद्वान वकील को सुनने के बाद, मेरा विचार है कि आक्षेपित आदेश को कायम रहने की अनुमति नहीं दी जा सकती है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए विस्तृत कारण देने से पहले, मैं

सिविल प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रासंगिक प्रावधानों पर ध्यान देना चाहूंगा -

"97-निरसन और बचत

(1) इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व किसी राज्य विधान-मंडल या उच्च न्यायालय द्वारा किए गए किसी संशोधन या मूल अधिनियम में अंतःस्थापित किए गए किसी उपबंध को छोड़कर, जहां तक ऐसा संशोधन या उपबंध इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप है, निरसित कर दिया जाएगा।

(2) इसके बावजूद कि इस अधिनियम के प्रावधान लागू हो गए हैं या उपधारा (1) के तहत निरसन प्रभावी हो गया है, और सामान्य खंड अधिनियम, 1897 की धारा 6 के प्रावधानों की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना। (10 of 1897)

(3) उपधारा (2) में अन्यथा उपबंधित किए जाने के अतिरिक्त, इस अधिनियम द्वारा यथा संशोधित मूल अधिनियम के उपबंध, इस अधिनियम के प्रारंभ में लंबित प्रत्येक वाद, कार्यवाही, अपील या आवेदन पर या ऐसे प्रारंभ के पश्चात् संस्थित या फाइल किए गए आवेदन पर इस तथ्य के होते हुए भी लागू होंगे कि अधिकार या कार्रवाई का कारण, जिसके अनुसरण में ऐसा वाद, कार्यवाही अपील या आवेदन संस्थित या फाइल किया गया है, ऐसे प्रारंभ से पूर्व अर्जित किए गए थे या उपार्जित किए गए थे।

(3) ऊपर उद्धृत उपधारा (2) के एक सादे पठन से पता चलता है कि विधानमंडल ने सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के प्रवर्तन को सुरक्षित रखा है, जबकि यह निर्धारित करते हुए कि पुराना अधिनियम कुछ कार्यवाहियों को नियंत्रित करता रहेगा। सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के अनुप्रयोग को बचाने का स्पष्ट उद्देश्य यह था कि विधियों के संशोधन के कारण पक्षों के मूल अधिकारों को खतरे में नहीं डाला जाना चाहिए जो प्रकृति में प्रक्रियात्मक था। संहिता की धारा 47 के तहत, जिसे संशोधित नहीं किया गया है,

मुकदमे का एक पक्ष या तो अपने मुकदमे को निष्पादन कार्यवाही के रूप में या इसके विपरीत चला सकता है। यह एक मूल अधिकार था और केवल प्रक्रिया से संबंधित अधिकार नहीं था। यह स्पष्ट रूप से सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के तहत सहेजा गया था, जो निम्नानुसार हैः -

6 निरसन का प्रभावः

जहां यह अधिनियम, या इस अधिनियम के प्रारंभ के बाद बनाया गया कोई केंद्रीय अधिनियम या विनियमन, अब तक किए गए या इसके बाद किए जाने वाले किसी भी अधिनियम को निरस्त करता है, तो जब तक कोई अलग इरादा प्रकट नहीं होता है, तब तक निरसन -

क) जिस समय निरसन प्रभावी होता है, उस समय प्रवृत्त या विद्यमान किसी भी चीज़ को पुनर्जीवित करना; या ख) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम के पूर्व प्रवर्तन को प्रभावित करना या उसके अधीन विधिवत किया गया कुछ भी; या ग) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम के अधीन अर्जित, उपार्जित या उपगत किसी अधिकार, विशेषाधिकार, दायित्व या दायित्व को प्रभावित करना; या घ) इस प्रकार निरसित किसी अधिनियम के विरुद्ध किए गए किसी अपराध के संबंध में उपगत किसी दंड, समपहरण या दंड को प्रभावित करना, या ङ) उपरोक्त किसी अधिकार, विशेषाधिकार दायित्व, दायित्व, दंड, समपहरण या दंड के संबंध में किसी अन्वेषण, कानूनी कार्यवाही या उपचार को प्रभावित करना; और ऐसी कोई जांच, कानूनी कार्यवाही या उपाय स्थापित किया जा सकता है, जारी किया जा सकता है या लागू किया जा सकता है, और ऐसा कोई दंड, समपहरण या दंड लगाया जा सकता है जैसे कि निरसन अधिनियम या विनियमन पारित नहीं किया गया था।

(4) प्रत्यर्थी के विद्वत वकील ने ऊपर देखे गए संशोधन अधिनियम, 1976 की उपधारा 97 की उपधारा (3) पर भरोसा किया है और तर्क दिया है कि

लेकिन अधिनियम की धारा 97 की उपधारा (2) में स्पष्ट रूप से सहेजे गए मामलों के लिए, नई संहिता सभी वादों और कार्यवाहियों पर लागू होगी। उनके अनुसार, चूंकि असंशोधित संहिता की धारा 47 की उप-धारा (2) को हटा दिया गया है, इसलिए किसी वादी के लिए अपने वाद का विचारण एक आवेदन के रूप में करने के लिए खुला नहीं था, भले ही यह वाद 1 फरवरी, 1977 को लागू हुए संशोधन अधिनियम, 1976 के लागू होने से पहले दायर किया गया था। विद्वान वकील द्वारा उठाए गए तर्क में मुझे कोई योग्यता नहीं मिलती है। धारा 97 की उपधारा (3) में प्रयुक्त प्रारंभिक शब्द "उपधारा (2) में अन्यथा उपबंधित किए गए शब्दों को छोड़कर" हैं।

ये शब्द स्पष्ट रूप से इंगित करते हैं कि उपधारा (2) क्षेत्र पर हावी होगी और उपधारा (3) केवल उन मामलों पर लागू होगी जिन पर उपधारा (2) लागू नहीं होती है। जैसा कि पहले देखा गया है, वादियों के मूल अधिकारों को विधानमंडल द्वारा धारा 97 की उपधारा (2) के अधीन यह स्पष्ट रूप से अवधारित करके संरक्षित किया गया है कि इस कानून के उपबंध सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 के उपबंधों की व्यापकता को प्रभावित नहीं करेंगे। भले ही हमें कुछ घुमावदार मार्ग अपनाना पड़े, फिर भी हम उसी गंतव्य तक पहुँचते हैं। दूसरे शब्दों में, सामान्य खंड अधिनियम की धारा 6 को संशोधन अधिनियम की धारा 97 के प्रावधानों पर वरीयता प्राप्त है। मामले के इस दृष्टिकोण में, याचिकाकर्ता को अपने मुकदमे को निष्पादन कार्यवाही में बदलने के लिए विद्वत निचली अदालत से अनुरोध करने का अधिकार था। इस प्रार्थना को अस्वीकार करके, विद्वत विचारण न्यायालय ने एक त्रुटि की है जिसके परिणामस्वरूप न्याय का गंभीर गर्भपात हुआ है। जाहिरा तौर पर, यदि याचिकाकर्ता द्वारा दायर वाद को इस आधार पर सक्षम नहीं माना जाता था कि वह पहले के आदेश को निष्पादित कर सकता था और जब वह चाहता था कि उसके मुकदमे को निष्पादन कार्यवाही के रूप में चलाया जाए तो उसके रास्ते में बाधाएं खड़ी की गईं, तो वह उस संपत्ति को सुरक्षित करने के उपाय के बिना रह जाएगा जिसे उसने मूल्यवान विचार के लिए खरीदा था। अक्सर यह कहा गया है कि प्रक्रियात्मक कानून न्याय के उद्देश्यों को पूरा करने के लिए होते हैं न कि इसे कम

करने के लिए। मुझे इस मामले में इस सुव्यवस्थित सिद्धांत को नजरअंदाज करने का कोई कारण नहीं दिखता है।

(5) ऊपर वर्णित कारणों के लिए, मैं इस याचिका को स्वीकार करता हूं, विद्वत विचारण न्यायाधीश द्वारा पारित आदेश को दरकिनार करता हूं और उसे याचिकाकर्ता को अपने मुकदमे को निष्पादन कार्यवाही में परिवर्तित करने की अनुमति देने का निर्देश देता हूं।

(6) पक्षकारों को उनके वकील के माध्यम से 24 अप्रैल, 1978 को विद्वत विचारण न्यायालय के समक्ष उपस्थित होने का निर्देश दिया जाता है।

अस्वीकरण : स्थानीय भाषा में अनुवादित निर्णय वादी के सीमित उपयोग के लिए है ताकि वह अपनी भाषा में इसे समझ सके और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है । सभी व्यवहारिक और आधिकारिक उद्देश्यो के लिए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण प्रमाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य के लिए उपयुक्त रहेगा ।

रमनीक कौर
प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी
(Trainee Judicial Officer)
फ़रीदाबाद, हरियाणा